स्त्री, स्त्रीत्व और स्त्री शिक्षा की चुनौतियाँ

डॉ. शशि*

समाज के निर्माण में स्त्री एवं पुरुष दोनों का ही महत्वपूर्ण योगदान होता है। किसी एक के अभाव में हम सम्पूर्ण समाज की परिकल्पना नहीं कर सकते, फिर समाज के संचालन में एक की सक्रियता है तो दूसरे को बाध्यता क्यों है? यह बाध्यता मानव जीवन के निरंतर प्रवाह में भले ही कोई गतिरोध न पैदा करे, लेकिन उसे कुंठित जरूर करती है। 'स्त्री' इस एक शब्द का ध्यान आते ही हमारे जेहन में इससे जुड़े हुए अनेक परस्पर विरोधी चित्र उपस्थित हो जाते हैं- देवी, कुलटा, विदुषी, पत्नी, माँ, पुत्री, नीच, अबला, माया, वेश्या और न जाने क्या-क्या। स्त्री संबंधी इन परस्पर विरोधी अवधारणाओं के सृजन में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पितृसत्ता को स्पष्ट करते हुए प्रभा खेतान ने लिखा है कि- ''पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हजारों साल से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनाया। उसे साधन के रूप में प्रयोग किया, उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने संदर्भ में परिभाषित किए। स्त्री का यह अमानवीयकरण दलित के अमानवीयकरण से कहीं ज्यादा सूक्ष्म है, क्योंकि दलित पुरुष भी तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सदस्य है और पुरुषोचित अहंकार के कारण स्त्री का शोषण और उत्पीड़न करने से वह भी बाज नहीं आता।''(1) अतः हम कह सकते हैं कि पितृसत्तात्मक मूल्य स्त्री विरोधी होते हैं। भारतीय समाज में जितने भी मूल्यों की बात कही गई है वे सभी मूल्य पितृसत्तात्मक समाज ने ही बनाए हैं, जो पुरुषों के तो समर्थक हैं लेकिन स्त्री-विरोधी हैं, इसलिए वे 'मानव मूल्य' नहीं हो सकते। तभी तो सिमोन ने लिखा है-

'स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है'

स्त्रियाँ पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती है। यह सवाल अपने आप में ही बहुत कुछ कह रहा है। हमारा समाज सदियों से पितृसत्तात्मक समाज रहा है। भारत में जो मध्यमवर्ग के लोग हैं, खास तौर पर जो नौकरी पेशा में हैं, वो परिवार प्लान करते हैं बाकी लोग कोई परिवार प्लान नहीं करते भगवान् की देन समझ पैदा किये जाते हैं। जो लोग परिवार प्लान करते हैं उनकी प्राथमिकता में बेटा ही होता है और जब तक बेटा नहीं होता तब तक पैदा करने की प्रक्रिया चलती रहती है। जो स्त्री मजबूरी वश लगातार बच्चे को जन्म दे रही है उसके मानसिक और शारीरिक स्तर पर क्या प्रभाव पड़ेगा? जो समाज महिला की इस स्थिति के बारे में नहीं सोच सकता वो स्त्रियों के बारे में और उनकी शिक्षा के बारे में क्या सोचेगा इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है।

'स्त्री बनाई जाती है' इससे साफ स्पष्ट हो रहा है कि पुरुष उसे अपने हिसाब से ढालता है, अपने उद्देश्य के हिसाब से उसे बनाना चाहता है न कि उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्त्व होता है। समाज में उनका हँसना, उनका मुस्कुराना, उनका बोलना, उनकी सुन्दरता, उनकी शारीरिक बनावट, उनके कपड़े हर चीज को डिजाईन करने वाला कौन है? या फिर किसको देखकर उसका विकास होता है? हमारे पितृसत्तात्मक समाज को या फिर उसके सामाजिक परिदृश्य को जिसमें स्त्री सदियों से गुलाम रही है।

आज का दौर परिवर्तन का दौर है, क्योंकि परिवर्तन ही संसार का नियम है। समाज में जो चीजें घटित होती हैं, वही हमारे साहित्य का भी हिस्सा बनती हैं। सामाजिक परिवर्तनों के साथ ही साथ साहित्य में बदलाव होता रहता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का भी मानना है कि 'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब या निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।' अगर संक्षेप में कहें तो सामाजिक स्पंदन का मूल्यपरक विवेचन ही साहित्य है।

* महाराजा अग्रसेन गर्ल्स इंटर कॉलेज
मथुरा (उ.प्र.)।

मुक्ति या स्वतन्त्रता एक बहुत बड़ा मूल्य है, जिसे शायद पराधीन रहकर ही बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। स्त्री मुक्ति के सन्दर्भ में यह पराधीनता बहुआयामी है। भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री की गरिमा उसके अनुगता होने में है, स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व के रूप में नहीं। यह अवधारणा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की बनाई हुई है, जिसके पीछे पुरुष जाति नहीं बल्कि पुरुषवादी विचारधारा है, जो इस समाज की मानसिक संरचना में रच- बस गई है। स्त्री चेतना को उसी से मुक्ति की आवश्यकता है। आज स्त्री की मुक्ति का मूल प्रश्न उसके मनुष्य के रूप में अस्वीकारे जाने का प्रश्न है, उसके मनुष्यत्व को स्वीकारना आज मानवता का सबसे बड़ा सवाल है, और उसी को लेकर स्त्रियां संघर्षरत भी हैं।

शिक्षा एक ऐसा अधिकार है जो प्रत्येक मनुष्य के बुनियादी और प्राथमिक अधिकारों में से एक है। मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र में यह घोषित किया गया है कि 'सबको शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।' चाहे वह शिक्षा प्राप्त करने वाला पुरुष हो या फिर स्त्री सबको समान अधिकार दिया गया है। लेकिन आज भी समाज की आधी आबादी अर्थात् स्त्रियों की शिक्षा को उतनी तवज्जो नहीं दी जाती जितनी कि पुरुषों की शिक्षा को। आज इक्कीसवीं सदी में भी देखा जा सकता है कि महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या अशिक्षित है, इसके अनेक कारण हैं। कभी पैसों की तंगी, तो कभी घरेलू काम काज का बोझ, तो कभी उनकी जल्दी शादी कर देना आदि बहुत से ऐसे कारण है जिनके कारण लड़कियाँ उच्च शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाती हैं। जिसका प्रभाव आने वाली भावी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है। फिर भी पहले की अपेक्षा आज समाज में काफी परिवर्तन नजर आता है जो शिक्षा के कारण ही संभव हो सका है।

हम एक ऐसे समाज में रहते हैं जहाँ पर आज भी लड़कियों को भ्रूण में ही मार दिया जात है, ऐसे में किसी भी लड़की के लिए समाज की चारदीवारी से बाहर निकल कर उच्च शिक्षा अर्जित करना तथा पुरुषों के बराबर बैठकर नौकरी करना बहुत बड़ी चुनौती है। सफलता मिल जाने पर तो सब तरफ चर्चा होती है लेकिन चर्चा करने वाले ही लोग पहले उसी लड़की के पढ़ने पर प्रतिबन्ध लगाने का काम करते हैं। ये समाज की परंपरा है कि सफल व्यक्ति को हर कोई सम्मान के नजरिये से देखता है लेकिन ये सफलता की सीढ़ी अधिकतर व्यक्तियों को अकेले ही चढ़नी होती है, और उस मुश्किल दौर में बहुत कम ही लोग होते हैं जो आपका साथ निभाते हैं। कई बार तो घर-परिवार वाले भी आपकी असफलता से तंग आकर आपका साथ छोड़ जाते हैं, लेकिन असफलता ही वह मार्ग है जो हमें प्रति दिन आगे, और आगे, बढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

आज हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ स्त्रियों की भी दावेदारी देखी जा सकती है, लेकिन स्त्रियों का यहाँ तक पहुँचना इतना आसान नहीं रहा है। वह भी इस पितृसत्तात्मक समाज में जहाँ स्त्रियों को खुल के बोलने तक की आजादी नहीं है, खुली हवा में साँस लेने की आजादी नहीं है, बाहर जाने की आजादी नहीं है, ऐसे में बाहर जाकर पढ़ना बहुत ही चुनौती भरा कदम है। कई बार माँ-बाप पढ़ाना भी चाहते हैं तो कभी समाज आड़े आता है तो कभी उसकी परिस्थितियाँ। विपरीत परिस्थितियों और समाज के रुढ़िवादी मानसिकता से जूझ कर ही नया रास्ता बनाया जा सकता है। कुछ नया करने के लिए पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों से टकराना लाजिमी है।

शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाहर किसी अनजान शहर में जाकर रहना किसी के लिए भी बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। खासकर, भारतीय समाज में लड़कियों के लिए, जहाँ बचपन में उन्हें पिता के संरक्षण में, जवानी में भाई के संरक्षण में, तो शादी के बाद पति के संरक्षण में और बुढ़ापे में पुत्र के संरक्षण में रखा जाता है। ऐसे में जब वो बाहर पढ़ने के लिए जाती हैं उन्हें कई तरह का डर होता है- नई जगह, नए लोग, नया माहौल आदि और वहाँ पर उनकी देखभाल तथा उनकी जरूरतों का ध्यान रखने के लिए न वहाँ उनके भाई हैं, न पिता और न ही उनका परिवार। ऐसे में उस माहौल में अपने को व्यवस्थित करना और उन परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना और शिक्षा अर्जन करना बहुत जिम्मेदारी का काम होता है।

किसी लड़की का बाहर जाकर पढ़ना और अपनी सुरक्षा के लिए उनका डर स्वाभाविक है। आज भी समाज में आये दिन लड़कियों को छेड़ने की और उनके साथ बलात्कार की घटनाएँ आम है। यही कारण है कि बहुत से माँ-बाप अपनी लड़की को बाहर पढ़ने की अनुमति नहीं देते। पितृसत्तात्मक समाज में हमेशा से ही लड़कियों के सताया और दबाया जाता रहा है फिर ऐसे माहौल में

अपने आपको साबित करना बहुत बड़ी चुनौति है क्योंकि घर से बाहर पढ़ने गई लड़की से परिवार वाले भी ज्यादा उम्मीदें करते हैं ऐसे में असफलता के लिए कोई जगह नहीं रह जाती।

खासकर जब कोई लड़की किसी पिछड़ी जगह से, या कह सकते हैं कि किसी छोटे शहर से, उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए किसी बड़े इंस्टीटच्यूट या यूनिवर्सिटी में जाती है तो वहाँ पहले से ही ऐसे विद्यार्थी मौजूद होते हैं जो किसी सुसंपन्न परिवार से और अच्छे संस्थान से शिक्षा ग्रहण करके आये हुए होते हैं उनके बीच किसी ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थी को अपनी मेहनत और अपनी काबिलियत के दम पर लोहा मनवाना भी बहुत चुनौतीपूर्ण होता है। उनमें अपने आपको स्थापित करना और अपनी एक अलग पहचान बनाना जहाँ उन्हें उनकी शिक्षा और काबिलियत के दम पर आँका जाए, न कि उनके पहनावे, उनकी बोली वाणी और उनके ग्रामीण परिवेश से आये होने के कारण।

महत्वाकांक्षा की होड़ में अपने को और अपनी काबिलियत को स्थापित करने में बहुत कुछ पीछे छूट जाता है। घर-परिवार, नाते-रिश्तेदार, होली-दिवाली सब कुछ पीछे रह जाता है। भारतीय समाज में ऐसी मान्यता है कि लड़कियों की शादी के बाद उनका मायका अर्थात् माँ-बाप का घर छूट जाता है, लेकिन आज के समय में हम कह सकते हैं कि उससे पहले ही उनका घर-परिवार, मायका तभी छूट जाता है जब वह अपना घर, अपना गाँव और अपना शहर किसी दूसरे शहर में शिक्षा अर्जन के लिए न चाहते हुए भी सब कुछ त्यागना पड़ता है। ऐसे समाज से बाहर निकल जो लड़की पढ़ने जाती है वह सिर्फ अपने को आगे नहीं बढ़ाती बल्कि उसके साथ उसका पूरा परिवार, पूरा गाँव, पूरा मोहल्ला और पूरा समाज आगे बढ़ता और जागरूक होता है। उसी से प्रेरणा लेकर सब लोग अपनी घिसी-पिटी मानसिकता को बदल अपनी लड़कियों को अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाने के लिए प्रेरित होते हैं।

अन्त में बस यही कहूँगी कि एक बेटी, एक बहन, एक पत्नी और एक माँ के अलावा भी एक महिला की देश के विकास में और स्वयं के विकास में एक निर्णायक भूमिका होनी चाहिए। जब तक वह स्वयं अपने विकास में अपनी भूमिका को नहीं समझेगी, वह आने वाली पीढ़ी और समाज को क्या देंगी? वही पितृसत्तात्मकता के चादर में लिपटी हुई घिसी-पिटी परम्पराएँ, रूढ़िवादी मानसिकता और धार्मिक अंधविश्वास जो सदियों से चली आ रही है जिसके चलते ही आज भी लड़कियों की स्थिति दयनीय है और उसी स्थिति को सुधारने के लिए स्त्रियाँ अथक प्रयास कर रही हैं। अगर हमें समाज की सोच को बदलना है तो उसकी पहली शर्त होनी चाहिए सबको अच्छी शिक्षा देना, खासकर उस आधी आबादी को जिसे सदियों से वंचित रखा गया है, अधिक से अधिक शिक्षित और जागरूक करना। यही एक मात्र जरिया है जिससे समाज को प्रगति के पथ पर ले जाया जा सकता है। हरिवंश राय बच्चन ने भी लिखा है-

"चरित्र जब पवित्र है
तो क्यों है ये दशा तेरी
ये पापियों को हक नहीं
कि लें परीक्षा तेरी
जला के भस्म कर उसे
जो क्रूरता का जाल है
तू आरती की लौ नहीं
तू क्रोध की मशाल है
तू खुद की खोज में निकल
तू किस लिए हताश है, तू चल तेरे वजूद की
समय को भी तलाश है।"